# आयुर्वेदस्य वेदमूलकता

डॉ॰दिनेश कुमारशर्मा

जगत् की सकल मानव जाति को त्रिविध तापों से पीड़ित अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त तथा नाना बाधाओं के कारण उनके इह लोक तथा परलोक के हित साधन में निरंतर व्यवधान डालने वाले कष्टों को देख कर प्राचीन काल में तपस्वी त्रिकाल दर्शी विद्वान एवं महर्षियों ने अत्यंत करुणा वश होकर इन कष्टों के निवारण हेतु समग्र जीवन दर्शन के रूप में जिस आरोग्य शास्त्र का प्रतिपादन किया ,वही अमृत तत्व आयुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है ।इसे पूर्ण रूप से यदि यदि मानव धर्म कहें तो अनुचित नहीं होगा । क्योंकि आयुर्वेद में केवल रोगों के कारण एवं उनकी चिकित्सा मात्र का ही वर्णन नहीं है , अपितु धर्म के समस्त सिद्धांतों का तथा काम क्रोध मोह लोभ ईर्ष्या द्वेष आदि तथा इनके कारण होने वाली शारीरिक एवं मानसिक व्याधिओं का तथा उनके निवारणार्थ सत्य अहिंसा आदि धर्म के सभी अंगों का भी विस्तार से विवेचन हुआ है । अतः इस शास्त्र के ज्ञान द्वारा मानव अपनी समस्त व्याधियों से मुक्त होकर स्वस्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त करते हुये अपने दोनों लोकों का कल्याण एवं चतुर्विध पुरुषार्थ का सम्पादन कर सकता है ।

**अर्थ** - आयुर्वेद की वेद मूलकता को अवगत करने से पूर्व सर्वप्रथम यह ज्ञात करना आवश्यक है कि आयुर्वेद का अर्थ क्या है ?-'आयुर्वेद ' शब्द 'आयु' तथा 'वेद' इन दोनों शब्दों के मेल से बना है ।

1. 'एति- गच्छति इति आयुः' अर्थात्जो निरंतर गतिमान् रहती है , उसे आयु कहते हैं ।
2. 'आयुर्जीवितकालः' अर्थात् जीवितकाल को आयु कहते हैं ।[1]
3. 'चैतन्यानुवर्तनमायु' अर्थात् जन्म से लेकर चेतना के बने रहने तक के काल को आयु कहते हैं ।[2]

वेद से तात्पर्य है - ज्ञान । अतः आयुर्वेद का सामान्य अर्थ हुआ - जीवन का विज्ञान ।

महर्षि चरक ने आयुर्वेद कि परिभाषा इस प्रकार दी है -

**हिताहितं सुखं दुखमायुस्तस्य हिताहितम्।**
**मानंच तच्च यत्रोक्त्मायुर्वेदः स उच्यते ।।**

अर्थात आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिस में हितायु , अहितायु, दुखायु एवं सुखायु –इन चतुर्विध आयुओं के लिए क्या हित है ?क्या अहित है ?आयु का मान क्या है ?तथा इसका स्वरूप क्या है ? आदि का वर्णन किया गया है ।

**वेदमूलकता** –यह सर्वविदित ही है कि चारों वेद ज्ञान विज्ञान के भंडार हैं तथा प्रचीनतम हैं ।आयुर्वेद के आद्य स्रोत ये ही हैं । आयुर्वेद कि विषय वस्तु चतुर्वेद में ही प्राप्त होती है परंतु सर्वाधिक

[1]अमरकोषः 2/8/120
[2]चरकसंहिता सूत्र 30/22

समानता अथर्ववेद से होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग [3] एवं वाग्भट ने अथर्ववेद का उपवेद [4] कहा है । आचार्य चरक ने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेद से बताई है एवं पुण्यतम वेद कहा है [5]। ऋग्वेद प्राचीनतम होने के कारण प्राचीनता कि दृष्टि से चरणव्यूह में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है । महाभारत [6]में भी आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है ।

चरकादि संहिता ग्रन्थों में आयुर्वेद के अष्टांग विभागानुसार दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु इसके बहुत पूर्व वेदों में तीन प्रकार के कष्टों के उपचार के लिए तीन ही प्रकार के उपाय किया जाते थे । आध्यात्मिक,आधिभौतिक तथा आधिदैविक । अष्टांग आयुर्वेद का नाम सर्वप्रथम किसने दिया ?यह कहना मुश्किल है ।पूर्व काल में अष्टाङ्ग आयुर्वेद के पृथक्-पृथक् अंग के विशेषज्ञों कि अधिकता थी ।जैसे महर्षि कश्यप कौमार भृत्य और अगदतन्त्र के विशिष्ट आचार्य थे ,इसी प्रकार शल्य तंत्र के भासुकि ,कायचिकित्सा के भरद्वाज तथा गार्ग्य,गालाव,जनक,निमि आदि शालाक्य-तंत्र के ज्ञाता थे । ऋक्,यजु तथा सामवेद के अतिरिक्त अथर्ववेद में अष्टांग आयुर्वेद कि सामग्री अधिक मात्र में उपलब्ध होती है ।सुश्रुतसंहिता के अनुसार आयुर्वेद के आठ अंग हैं -काय, शल्य,शालाक्य, कौमार-भृत्य, भूत-विद्या, अगद-तंत्र, रासायन तथा वाजीकरण । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

1. **काय-चिकित्सा**- ज्वर, अपस्मार, कुष्ठादि रोगों को दूर करने के उपाय को काय-चिकित्सा कहते हैं ।
2. **शल्य**- अनेक प्रकार के तृण , प्रस्तर, अस्थि आदि, दूषित घाव,अन्तःशल्य ,गर्भ शल्य आदि के निष्कासन के लिए यंत्र-शस्त्र, क्षार तथा अग्नि के प्रयोग एवं व्रण के विनिश्चय के लिए जो कर्म किए जाते हैं वे शल्य कर्म कहलाते हैं ।
3. **शालाक्य**- सिर नेत्र कान नाक आदि में होने वाले रोगों की शांति के लिए तथा नेत्र रोग में शलाका द्वारा किए जाने वाले कर्म को 'शालाक्य' कहते हैं ।
4. **कौमारभृत्य**- बाककोण के भरण पोषण धात्री की परीक्षादिका विधान जिसमें वर्णित हो उसे 'कौमारभृत्य' नाम से कहा गया है ।
5. **भूत विद्या**- देव गंधर्व आदि के आवेश को शांत करने के लिए किए जाने वाले उपाय को 'भूत विद्या' कहते हैं ।
6. **अगद तंत्र**- सर्प बिच्छू आदि के दंश से उत्पन्न विश तथा अन्य विषों की शांति हेतु वाले उपाय जिसमाइन कहे गए हों वह अगद तंत्र है ।
7. **रसायन**- वयःस्थापन ,आयुष्य ,बल तथा ओज की वृद्धि के लिए तथा रोगों को दूर करने हेतु जिसमें उपाय बताए हों वह रसायन है ।
8. **वाजीकरण**- क्षीण वीर्य -दोष को दूर करने,शुक्र संशोधन ,वृद्धावस्था दूर करने , अश्व के समान पौरुष शक्ति उत्पन्न करने का वर्णन जिस में बताया हो, वह वाजीकरण है ।

---

[3]सुश्रुत सूत्र *1/6*

[4]अष्टांगहृदय सूत्र *8/9*

[5]चर्कसंहिता सूत्र *1/43*

[6]सभापर्व *11/33* पर नीलकंठ की व्याख्या

अष्टांग आयुर्वेद की अथर्ववेद में प्रचुर मात्रा प्राप्त होती है ।इस दृष्टि से अथर्ववेद में इसके प्रत्येक अंग का अवलोकन इस प्रकार है –

1. **काय चिकित्सा**–आयुर्वेद के अष्टांगों में काय चिकित्सा का वर्णन अथर्ववेद में अधिक मात्र में उपलब्ध होता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्र में स्थान स्थान पर औषधि के रूप में तथा उपचार रूप में देखे जाते हैं । अथर्ववेद में प्रायःज्ञात और अज्ञात तथा छोटी बड़ी सौ व्याधियों का वर्णन मिलता है ।अथर्ववेद के नवां कांड के आठवें सूक्त में व्याधियों के नामकरण की एक सूचि प्राप्त होती है ,जिसके प्रथम चार मंत्रों में सिर के रोगों का वर्णन है ।5 से 9 तक के मंत्रों में प्रचलित व्याधियों का वर्णन किया गया है । हृदय तथा उदर की व्याधियों का वर्णन दस से चौदह मंत्रों में स्पष्ट वर्णित है ।पंद्रह से सत्रह तक के मंत्रों में पार्श्वास्थि तथा गुदास्थि का वर्णन है ।अठारह से इक्कीस तक के मंत्रों विशल्यक , विद्रधि आदि रोगों के नाम के साथ पैर जानु एवं श्रोणि का वर्णन प्राप्त होता है । अथर्ववेद में कुछ ऐसी व्याधियों का वर्णन तथा चिकित्सा भी मिलती है ,जो निरोग होने में कालापेक्षी है तथा कुछ ऐसी व्याधियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो अल्प कालापेक्षी तथा अस्पष्ट है ।अथर्ववेदीय साहित्य में व्याधियों के वर्गीकर्ण या कायचिकित्सात्मक निदानादि दृष्टिकोण से विभाग नहीं देखे जाते , जैसे की चरक,सुश्रुत आदि संहिताओं में वर्गीकरण देखे जाते हैं ।

2. **शल्य तंत्र** –अथर्ववेद में [7] शरीर से पृथक् हुयी अस्थियों को रथ के विभिन्न अंगों के समान जोड़कर रथ की ही तरह मनुष्य को स्वस्थ बना देने वाला आदेश दिया गया है ।दुख-प्रसव तथा विकृत-प्रसव के लिए योनि भेदन का वर्णन मिलता है ।[8] कष्ट साध्य लोहिनी और कृष्णा नामक अपची को किसी किसी विशेष शर से भेदन करने के लिए उल्लेख प्राप्त होता है [9]। मूत्राघात रोग में शर तथा शलाका आदि द्वारा मूत्र को निकालने या भेदन करने का आदेश दिया गया है [10]। ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों द्वारा नाना चमत्कार रूप भैषज्य विषय देखे जाते हैं जैसे – दासों द्वारा अग्नि और जल में फेंकने पर, पुनः सिर एवं वक्षस्थल के टुकड़े टुकड़े करने पर भी जीवित दीर्घतमा ऋषि को अश्विनी कुमारों ने स्वस्थ कर दिया [11]।

3. **शालाक्य-तंत्र** –अथर्ववेद में सम्पूर्ण सिर के रोगों तथा कान के रोगों को दूर करने का आदेश मिलता है [12]।इन मंत्रों में शीर्षक्ति ,शीर्षामय और शीर्षण्य- सिर के इन तीनों रोगों का नामकरण मिलता है ।ये पृथक्-पृथक् रोग प्रतीत होते हैं ।कुष्ठ नामक औषधि को शीर्षामय तथा नेत्र रोग नाशक कहा गया है । नेत्र के रोगों के संबंध में अथर्ववेद में विभिन्न साधनों पर चिकित्सा का वर्णन है । कहीं कहीं जल चिकित्सा, आजनमणि, तो कहीं जंगिडमणिके प्रयोग से तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं दिव्य सुवर्ण के उपचार मिलते हैं ।[13]

---

[7] 4/12/7

[8] अथर्ववेद *1/11/1*

[9] अथर्ववेद *7/74/1*

[10] अथर्ववेद *1/3/1*

[11] ऋग्वेद *1/158/4*

[12] अथर्ववेद *9/8/1*

[13] अथर्ववेद *19/35/3,5/4/10 , 5/4/2*

4· **कौमार भृत्य** –गर्भाधान,गर्भ की पुष्टि , गर्भ की रक्षा , सुख प्रसव एवं जन्मकाल के अमांगलिक क्षणों में हानिकर प्रभाव को दूर करने के लिए अनेक मंत्र अथर्ववेद में मिलते हैं ।[14]अथर्ववेद में कुछ ऐसे भी मंत्र हैं जिनमें औषधि मंत्र एवं रक्षायंत्र का प्रयोग निर्दिष्ट है ।[15] प्रसव के लिए भी मंत्रों की बहुलता वहाँ उपलब्ध होती है [16]।

5· **भूत विद्या** –गंधर्व,यक्ष,राक्षस,ग्रहादि के आवेश से दूषित शरीर एवं मन की शांति के लिए कुछ कर्म जैसे –दान,पूजा आदि किए जाते हैं,यह भूत विद्या है । इसका आदि स्रोत अथर्ववेद है ।चरक सुश्रुत आदि संहिता ग्रन्थों में पूतना आदि ग्रहों को बाल रोग का कारण माना गया है । आयुर्वेद ने उन्माद,अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों के कारणों में भूत, प्रेत, पिशाच तथा गंधर्व को भी एक कारण माना गया है ।

6· **अगद-तंत्र** –अथर्ववेद में अगदतंत्र से सम्बन्धित विषय जैसे –स्थावर और जंगम ,विष,सर्प,वृश्चिक विषाक्त कीटाणु तथा विषाक्त बाण इत्यादि के विषय में अनेकों मंत्र मिलते हैं ।[17] ऋग्वेद में भी सर्प विष ,वृश्चिक विष तथा विषाक्त कीटों से संबन्धित मंत्र पाये जाते हैं ।[18] अथर्ववेद के एक मंत्र के अनुसार [19] सूर्य,अग्नि,पृथ्वी वनस्पति तथा कंद में यदि विष है तो उसे नष्ट करने का आदेश दिया गया है।अथर्ववेद में अनेक विषाक्त सर्पों के नाम उपलब्ध होते हैं ।विष को नष्ट करने के लिए कुछ वनस्पतियों से संबन्धित मंत्र भी प्राप्त होते हैं ।[20] चरक संहिता में भी चिकित्सा स्थान *[23,25 ]* में जल से परिषेचन और अवगाहन बताया है ।कोशिक सूत्र में सब प्रकार के विषस्तंभ के लिए उपाय दिये गए गए हैं ।[21] अथर्ववेद में जप करते हुये जेठी मधु को पीसकर तथा निर्दिष्ट मंत्र से अभिमंत्रित कर रोगी को पान कराना चाहिए तथा खेत की वाल्मीक मिट्टी को पशु-चर्म में बांध कर कवच की तरह धारण करना चाहिए ।

7· **रसायन तंत्र** –जो औषधि रसादि धातुओं में क्षीणता न आने दे तथा व्याधियों को नष्ट कर स्वस्थ रखे, वही रसायन है । अथर्ववेद में जल तथा इसके गुणों की प्रशंसा की गयी है एवं जल को वृद्धावस्था और व्याधि दूर करने तथा अनश्वरता पैदा करने वाला द्रव्य बताया गया है ।[22] कुछ मंत्रों में जल को विभिन्न प्रकार के रोगों की औषधि तथा शारीरक रोगों को दूर करके शरीर एवं त्वचा को सुस्थिर एवं स्वस्थ बनाने वाला कहा गया है ।[23]अथर्ववेद जल को रस मानता है तथा जल से अक्षय बल और प्राण की याचना करता है ।[24]

---

[14]अथर्ववेद *5/25/1-3*,6/81/1-3, *6/17/1-4,1/11/1-6,6/110/1-3*

[15]अथर्ववेद *1/81/1-3*

[16]अथर्ववेद1/11/1-6

[17]अथर्ववेद *4/6/1-8,4/7/1-6 7/88/1*

[18]ऋग्वेद *7/50,1/191*

[19]अथर्ववेद 10/4/22

[20]अथर्ववेद *2/27/2*

[21]कौशिकसूत्र *29/2/8*

[22]अथर्ववेद *3/7/5,6/24/2*

[23]अथर्ववेद *3/7/5-7,4/33,6/22-24*

[24]अथर्ववेद *3/13/5*

8. **वाजीकरण** –अथर्ववेद में पुरुषत्व के विकास के लिए अनेक मंत्रों का उल्लेख मिलता है । कुछ मंत्रों में अश्व,हस्ती,गर्दभ और वृषभ सदृश पुरुषत्व शक्ति के अर्जन के लिए प्रार्थना की गयी है ।

**उपसंहार** –महाभारत तथा चरणव्यूह में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है ,किन्तु उसमें अष्टांग आयुर्वेद की मात्रा कम प्राप्त होती है । दूसरी ओर सर्वाधिक समानता अथर्ववेद से होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग एवं वाग्भट्ट ने अथर्ववेद का उपवेद कहा है ।आचार्य चरक ने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेद से बताई है एवं पुण्यतम वेद कहा है ।इस प्रकार आयुर्वेद की वेद मूलकता सर्वथा स्पष्ट ही है ।